भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन

—महावीर-चरित एवं जैन-दर्शन का विश्वकोश

समीक्षक : प्रो० सुरेशचन्द्र गुप्त

विश्व-साहित्य की परम्परा में वाङ्मय के दो रूप स्पष्ट दिखायी देते हैं —पहला धार्मिक साहित्य के रूप में तथा दूसरा शुद्ध साहित्य के रूप में। संसार की विभिन्न जातियों की धार्मिक आस्थाओं –हिन्दुओं को मान्य वैदिक धर्म, इस्लाम, ईसाई मत, बौद्ध धर्म, जैन-दर्शन इत्यादि को समझने-समझाने के लिए अंग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में प्रचुर सामग्री विद्यमान है। अंततः दोनों ही प्रकार के साहित्य का लक्ष्य मानवोत्थान ही होता है। फिर भी, प्रश्न हो सकता है कि आखिर धर्मविषयक रचनाओं की प्रासंगिकता क्या होती है और ऐसी रचनाएँ क्यों अपेक्षित होती हैं। उत्तर सीधा है—किसी विशिष्ट जनसमुदाय की एकता को बनाए रखने के लिए ऐसी रचनाओं का जन्म होता है और इसी में इनकी सार्थकता है। प्रायः अपने-अपने धर्म-समुदाय के अन्तर्गत ऐसे लेखन का महत्त्व इतना अधिक है कि इस विषय में जितना भी कहा या सोचा जाए, कम ही होगा। धर्म-सम्प्रदाय-विशेष के निरन्तर विकास और विस्तार के लिए ऐसी रचनाएँ एक प्रकार के शोधक का कार्य करती हैं। स्वयं को, धर्म के संदर्भ में, समझने-परखने के लिए भी ऐसे साहित्य की सार्थक भूमिका रहती है। नए मूल्यों की स्थापना का कार्य भी समय-समय पर धार्मिक साहित्य ही करता है। इसी संदर्भ में यह भी स्पष्ट है कि ऐसे साहित्य के माध्यम से विभिन्न धर्म अपना-अपना मूल्यांकन भी करते रहते हैं। निश्चय ही यह मूल्यांकन मूल्यों की स्थापना के संदर्भ में ही होता है। समय-समय पर मूल्यों के ह्रास के कारण उत्पन्न परिस्थितियों को सही दिशा देने के लिए भी ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है। मानव-मूल्यों को, किसी भी युग में, पोषित करने में धार्मिक साहित्य के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। यही साहित्य, वास्तव में, हमें हमारे होने का अहसास कराकर जीवन जीने के लिए त्याग, तप, कर्म और मानव-प्रेम की पवित्र संकल्पना से हमें परिचित कराता है। विभिन्न प्रकार की नैतिक तथा आध्यात्मिक मान्यताओं के सन्दर्भ में भी तुलनात्मक अनुसंधान को सही दिशा देने का कार्य ऐसा साहित्य ही करता है। देश-काल से जुड़ी नैतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताएँ समय के सन्दर्भों में कितनी खरी उतरती हैं, इस बात का परिचय भी हमें ऐसे ही साहित्य से मिलता है। नैतिकता और अनैतिकता का प्रश्न जब-जब आड़े आता है, तो हमें धार्मिक साहित्य की शरण में जाना पड़ता है। भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में 'रामायण', 'महाभारत', 'श्रीमद्भगवद्गीता' इत्यादि धर्म-ग्रन्थ इसी परम्परा के अंग हैं। जैन धर्म-ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री भी इसी कड़ी में मानवोत्थान के लक्ष्य पर बल देती रही है। ऐसे धर्म-ग्रन्थ अन्ततः हमारे जीवन से इतनी निकटता के साथ जुड़ जाते हैं कि उनका अनुशीलन हमारी जीवन-यात्रा का अनिवार्य अंग बन जाता है।

धार्मिक साहित्य और शुद्ध साहित्य के अपने-अपने गुण होते हैं। दोनों ही रिक्तता की स्थिति में अपना प्रभाव दिखाते हैं। फिर भी, देखा यही गया है कि शुद्ध साहित्य से जुड़े रचनाकार यदा-कदा ही धार्मिक साहित्य की रचना के प्रति उदार होते हैं। धर्म से जुड़े मूल्यों में अपनी आस्था व्यक्त करते हुए भी वे अपने लेखन में उसके प्रति निरपेक्ष दिखायी देते हैं। धार्मिक साहित्य में प्रवचन-मूलकता के कारण कहीं तो अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति आ जाती है और कहीं पुनरावृत्ति का तत्त्व प्रधान रहता है। इसे धार्मिक साहित्य की आवश्यकता भी माना जा सकता है, क्योंकि बार-बार कहने से कथन-विशेष का प्रभाव लम्बे समय तक स्थिर रहता है तथा समर्पण का भाव भी जाग्रत हो जाता है। आख्यानबहुलता भी धार्मिक साहित्य से जुड़ी होती है। विभिन्न आख्यानों के माध्यम से सत्य की खोज का प्रयत्न किया जाता है और मुक्ति की राह दिखाने की चेष्टा की जाती है। यह भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न धर्मों के साहित्य के अन्तर्गत उपलब्ध आख्यान—नाम, देश, काल आदि के थोड़े-बहुत फेर-बदल के साथ—प्रायः एक-से ही लक्षित होते हैं। ईश्वर के विभिन्न रूप विभिन्न धर्मों के माध्यम से प्रस्तुत तो होते हैं, किन्तु एक ज्योति अथवा एक शक्ति में ही सबका विश्वास रहता है। फिर मानव के हित की बात तो सभी धर्म एक-सी ही करते हैं। प्रत्येक धर्म के साहित्य में मानव-हित का यही स्वर गुंजायमान रहता है। साहित्य एवं धर्म दोनों ही में अनुभूति का तत्त्व प्रधान होता है। कहीं निजी अनुभव की ही व्याप्ति रहती है, तो कहीं निजी भाव के ताल-मेल से रचना को पोषित किया जाता है। कला के माध्यम से ऐसी रचनाएँ अपनी गहरी छाप छोड़ती हैं। रचनाकार इनमें विवेकशील रहकर बार-बार तर्क और तुलना से अपनी भावना को प्रस्तुत करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मज्ञ जन निष्ठा, समर्पण-भाव और अपनी ग्राह्यता की सीमा के अनुरूप उसे ग्रहण करते हैं। यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। कल्पना-लालित्य का तत्त्व भी इसमें यत्किंचित् योग देता है। इन सभी गुणों को एक साथ समाहित करने पर ही प्रभावी धार्मिक साहित्य का उदय होता है। यही कारण है कि धार्मिक साहित्य प्रत्येक युग में जन-जन की धरोहर बनता है तथा अपने समुदाय-विशेष में ही सीमित न रहकर अपनी प्रकाश-किरणों को विश्व के प्रांगण में बिखेर देता है। इसी परिप्रेक्ष्य में 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन' शीर्षक प्रस्तुत ग्रन्थ अवलोकनीय है और उसकी उपादेयता विचारणीय है।

आचार्यरत्न देशभूषण जी द्वारा रचित-सम्पादित 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन' शीर्षक बृहत्काय ग्रन्थ, रायल अठपेजी आकार में, भगवान् महावीर के निर्वाण के पच्चीस सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में सन् १९७३ में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत ग्रन्थ चार अध्यायों में विभाजित है। प्रथम तीन अध्यायों में क्रमशः जैन धर्म के सामान्य स्वरूप, जैनाभिमत भूगोल और काल का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में कवि नवलशाह कृत 'वर्धमान पुराण' काव्य का प्रकाशन हुआ है। ब्रजभाषा में रचित मूल कृति के साथ ही आचार्य जी ने खड़ी बोली में सरल व्याख्या भी प्रस्तुत कर दी है। 'वर्धमान पुराण' की रचना संवत् १८२५ में महाराज छत्रसाल के पौत्र हिन्दूपति के राज्य-काल में हुई थी। ग्रन्थ के इसी अध्याय में जैन धर्म, भगवान् महावीर आदि के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण सामग्री संकलित है। देशभूषण जी के अतिरिक्त इस अध्याय में जिन अन्य विद्वानों के लेख संकलित हैं, वे हैं—जुगलकिशोर मुख्त्यार, डॉ० जैकोबी, मुनि नगराज तथा अगरचन्द नाहटा। उक्त सम्पूर्ण सामग्री के अतिरिक्त ग्रन्थ के आरम्भ में श्री सुमेरचन्द्र दिवाकर की प्रस्तावना, श्री ए० एन० उपाध्याय की अंग्रेजी-भूमिका तथा श्री बलभद्र जैन का आमुख भी दिया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता अद्यावधि अज्ञात ग्रन्थ 'वर्धमान पुराण' का संपादन-मुद्रण है। इसकी पांडुलिपि दिगम्बर जैन खंडेलवाल मन्दिर, वैदवाड़ा, दिल्ली में सुरक्षित थी, जिसे प्रकाश में लाने के लिए आचार्य श्री बधाई के पात्र हैं। 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन' धर्मग्रन्थ है। अतः ग्रन्थ-परिचय और समीक्षा के लिए उसी दृष्टिकोण को अपनाना होगा। ग्रन्थ की रचना पारम्परिक धर्मनिरूपिणी शैली में हुई है, फलस्वरूप इसे प्रवचन-पद्धति की रचना कहना ही उचित होगा। यहाँ इसके प्रत्येक अध्याय के प्रतिपाद्य पर विचार किया जा रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का प्रतिपाद्य है—जैन धर्म का सामान्य स्वरूप। आचार्य देशभूषण जी ने धर्म का यह लक्षण स्थिर किया है: "अन्त-रहित इस संसार के भ्रमर रूपी जाल में फंसकर भ्रमण करने वाले जीव कोटि को कर्मपाश से मुक्त कर नित्य पद जो कि सुखमय है उसमें जो पहुंचाने वाला है, वही धर्म है।" जैन धर्म में कर्म को बन्धनमूलक नहीं, अपितु बन्धन से मुक्ति दिलाने वाला माना गया है। कर्म से ही जीव को रागादिक भाव-कर्म और ज्ञानावरण आदि द्रव्य-कर्म से मुक्ति मिलती है। सर्वोपरि ध्येय सुख को प्राप्त करके वह धर्म की ओर प्रेरित होता है। धर्म रूपी सुख के इस अभ्युदय को जैनाचार्यों ने 'धर्मः सर्वसुखकरो हितकरो' के रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार कर्म से प्राप्त धर्म सर्वार्थसिद्धि का दाता होता है।

जैन धर्म की स्वरूप-चर्चा के संदर्भ में देशभूषण जी ने आचार्य समन्तभद्र के निम्नलिखित श्लोक की विस्तृत तत्त्वनिरूपिणी व्याख्या प्रस्तुत की है:

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।।

देशभूषण जी ने धर्म में समीचीनता को महत्त्व दिया है: "धर्म यथार्थ और विवेक पर आधारित रहता है, वह प्राचीन और अर्वाचीन की समन्वय-भूमि है, किन्तु यह समीचीनता व्यक्ति, देश और काल पर निर्भर करती है अर्थात् अवस्थाविशेष में समीचीनता का मानदंड बदल जाता है।" कर्म, धर्म और समीचीनता की इस त्रयी में से, आगे चलकर, उन्होंने कर्म को शत्रु-रूप भी कहा है। उन्हीं के शब्दों में, "जिन्होंने अरिरज रहस्य यानी कर्म-शत्रु को जीत लिया है उनको जिन कहते हैं, उन्होंने प्राप्त किया जो आत्म-स्वरूप उसको आत्मधर्म या जैन धर्म कहते हैं।" सम्पूर्ण मिथ्या-मार्ग के निराकरण पर बल देना ही आचार्य जी का अभीष्ट है। जीव निरंजन पद को कब प्राप्त होता है अर्थात् अखण्ड सिद्धात्मा कब कहलाता है, इसकी भी उन्होंने सुन्दर व्याख्या की है। उनके अनुसार जीव का उत्थान-पतन स्वयं उसी पर निर्भर करता है—जन्म, जरा और मरण के रूप में वह क्रमशः सृष्टिकर्ता, स्थिति कर्तव्य और लय कर्तव्य नाम्नी तीन स्थितियों का अनुभव करता है। आचार्य जी ने द्रव्य, षट्द्रव्य तथा जीव द्रव्य पर भी विचार प्रस्तुत किए हैं। उनके मत में जीव सर्वव्यापक, निर्विकल्प और ब्रह्मानंद में सदा तैरने वाला है। जीव का लक्षण और उसके भेद, कर्म और उसके भेद, धर्म द्रव्य, काल द्रव्य, सप्त तत्त्व, अष्ट कर्म आदि का विवेचन भी लेखक ने सारग्राहिणी शैली में किया है। आचार्य-श्री ने पाक्षिक श्रावक का वर्णन, अष्ट मूलगुण, सप्त व्यसन दोष वर्णन, दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, रात्रि-भोजन-त्याग, ब्रह्मचर्य प्रतिमा आदि का स्वरूप-वर्णन भी जैनधर्मानुसार किया है। अध्याय के अंत में आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग, उद्दिष्ट त्याग, बारह भावनाओं, सोलह कारण भावनाओं, बाईस परिषहों, बारह प्रकार की तपस्याओं, गुण-स्थान आदि के वर्णन द्वारा जैन धर्म का संक्षेप में परिचय दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में जैनाभिमत भूगोल के अन्तर्गत विश्व-परिचय, लोक-लक्षण, वातवलय-परिचय, पर्वत-प्रमाण, सागर-प्रमाण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नदियों इत्यादि के द्वारा संसार के विकास को रूपायित किया गया है। आचार्य जी के मत में अनन्तानंत अलोकाकाश के बहुमध्यभाग में स्थित जीवादि पांच द्रव्यों में व्याप्त और जग-श्रेणी के घन प्रमाण से युक्त यह लोकाकाश है। बुद्धिमान् मनुष्य सब समय सर्वत्र व्याप्त रहने वाले जिनेन्द्र भगवान् के वचन रूपी उत्तम दीपकों के सामर्थ्य से सूर्य और चन्द्रमा से विहीन अधोलोक के अंधकार को नष्ट कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को देखते हुए प्रभुत्व को प्राप्त होते हैं। इसमें आश्चर्यजनक कुछ नहीं है, क्योंकि तीन लोकों में जिनेन्द्र रूपी सूर्य के द्वारा प्रकाश के उत्पन्न होने पर अंधकार कहाँ रह सकता है? प्रस्तुत अध्याय में उपर्युक्त सभी पक्षों का वर्णन पर्याप्त विस्तार और स्पष्टता के साथ हुआ है। अध्याय के अन्त में आचार्य जी ने जीवमात्र के उद्बोधन के लिए यह मत व्यक्त किया है : "लज्जा से रहित, काम से उन्मत्त जवानी में मस्त, परस्त्री में आसक्त, और दिन-रात मैथुन सेवन करने वाले प्राणी नरकों में जाकर घोर दुःख को प्राप्त करते हैं।" तृष्णा प्रभृति मायात्मक प्रपंच का भी उन्होंने तीव्रता के साथ खंडन किया है : "पुत्र, स्त्री, स्वजन और मित्र के जीवनार्थ जो लोग दूसरों को ठगकर तृष्णा को बढ़ाते हैं तथा पर के धन को हरते हैं, वे तीव्र दुःख को उत्पन्न करने वाले नरक में जाते हैं।" संक्षेप में, प्रस्तुत अध्याय मात्र विवरणात्मक न होकर ओजमयी उद्बोधन-क्षमता से अनुप्राणित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में जैन धर्मानुसार काल के स्वरूप और उसके तीन रूपों का वर्णन हुआ है। भोगभूमि में दस प्रकार के कल्पवृक्षों की परिकल्पना भी प्रस्तुत अध्याय में विस्तृत रूप से विद्यमान है। ये कल्पवृक्ष इस प्रकार हैं—गृहांग, भोजनांग, भाजनांग, पानांग, वस्त्रांग, भूषणांग, माल्यांग, दीपांग, ज्योतिरांग, तुर्यांग। इन सभी से भोगभूमि के जीवों को नाना प्रकार की भोगोपभोग-सामग्री प्राप्त होती है। इसके अनंतर जैन धर्म द्वारा मान्य चौदह कुलकरों का विशेष परिचय दिया गया है। कुलकरों का दूसरा नाम मनु भी है। सभी कुलकर पूर्व भव में विदेह क्षेत्र के क्षत्रिय राजकुमार थे। मिथ्यात्व दशा में उन्होंने मनुष्य-आयु का बंध कर लिया था। फिर उन्होंने मुनि प्रभृति सत्पात्रों को विधि-सहित भक्तिपूर्वक आहार-दान दिया, जीवों का दुःख करुणा भाव से दूर किया। विशिष्ट दान के प्रभाव से वे भोगभूमि में उत्पन्न हुए। इनमें से अनेक कुलकर पूर्वभव में अवधिज्ञानी थे। वे इस भव में भी अवधिज्ञानी हुए। अतः उन्होंने, अवधिज्ञान से जानकर, अपने समय के लोगों की समस्याएं सुलझायीं। अन्य कुलकर विशेष ज्ञानी थे, अतः वे जाति-स्मरण के धारक हुए। उन्होंने भी जनता का कष्ट दूर किया। इस प्रकार कुलकरों के सम्पूर्ण परिचय और उनके क्रियाकलाप को प्रस्तुत अध्याय में वर्णनात्मक-व्याख्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान तीर्थंकरों—भगवान् आदिनाथ से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ तक—के जीवन-चरित्र भी यथेष्ट विस्तृत रूप में इस अध्याय में समाविष्ट हैं। तीर्थंकरों के परिचय की विशेषता यह है कि पूर्वभव एवं वर्तमान परिचय दोनों को साथ-साथ दिया गया है। आचार्य-श्री की शैली यहां इतनी स्पष्ट और रोचक है कि पाठक सहज ही सर्वस्व ग्रहण करते हुए आख्यान और दर्शन का आनन्द एक साथ पाता है। काल-वर्णन से लेकर तीर्थंकरों के जीवन-वर्णन तक का आख्यानयुक्त इतिहास प्रस्तुत अध्याय की अनुपम देन है।

चतुर्थ अध्याय का विशेष आकर्षण है—रीतिकालीन कवि नवलशाह कृत 'वर्धमान पुराण' का पहली बार प्रकाशन। इसका सम्पूर्ण श्रेय आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी को है, जिन्होंने इस अप्रकाशित ग्रंथ को प्रकाशित कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस काव्य-ग्रन्थ पर विस्तृत रूप में आगे विचार किया जाएगा। चतुर्थ अध्याय में ही सर्वश्री जुगलकिशोर मुख्त्यार, डॉ० जैकोबी, मुनि नगराज तथा अगरचन्द नाहटा के शोधपूर्ण लेख संकलित हैं। जुगलकिशोर जी ने भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन का परिचय देते हुए उनके निर्वाणकाल पर प्रकाश डाला है। डॉ० जैकोबी ने भी भगवान् महावीर के काल-निर्णय में सारगर्भित भूमिका निभायी है। मुनि नगराज ने महावीर स्वामी का काल-निर्णय तर्कपूर्ण पद्धति के आधार पर किया है। नाहटा जी के लेख में महावीर-शासन की विशेषताओं की झलक मिलती है। 'गौतम-चरित्र', 'भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध', 'यजुर्वेद में महावीर-उपासना', 'भगवद्गीता में तीर्थंकर-उपासना' इत्यादि लेखों के माध्यम से भी प्रस्तुत अध्याय में अत्यधिक ज्ञानवर्द्धक सामग्री को स्थान दिया गया है। जैन धर्म और विज्ञान, अहिंसा धर्म, धार्मिक निर्दयता आदि सामयिक विषयों पर उपलब्ध विचारों के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ की गरिमा असन्दिग्ध रूप में वर्द्धित हुई है। इस कोटि की प्रभावशाली सामग्री का प्रस्तुतीकरण आचार्य श्री की कर्मठता का प्रमाण है। 'वर्धमान पुराण' का संशोधन और सम्पादन करके आचार्य देशभूषण जी ने जैन साहित्य की समृद्ध परम्परा में एक और महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ी है। वास्तव में यह रचना जैन हिन्दी-काव्य में अपना समुचित स्थान बनाने में भाव, भाषा, छन्द, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से समर्थ है। देशभूषण जी के काव्य-प्रेमी मन ने 'वर्धमान पुराण' नामक काव्य-ग्रन्थ को संकलित करके भारतीय समाज के समक्ष अपनी सूझ-बूझ तथा धार्मिक साहित्य के प्रति अटूट लगन का प्रमाण दिया है।

'वर्धमान पुराण' ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का परिचय इसके नाम से ही हो जाता है। इसमें भगवान् महावीर के पूर्वजन्मों तथा वर्तमान जीवन का परिचय प्राप्त होता है। कविवर नवलशाह कृत प्रस्तुत ग्रन्थ ब्रजभाषा का एक सरल काव्य-ग्रन्थ है। पुराण-परम्परा के अनुसार इसमें मंगलाचरण के अनंतर वक्ता और श्रोता के लक्षण प्रथम अधिकार में दिए गए हैं। ग्रन्थ में कुल मिलाकर सोलह अधिकार हैं। द्वितीय अधिकार में असंख्य वर्षों तक निम्न योनियों में भ्रमण आदि का वर्णन है, तो तृतीय अधिकार में नारकीय परिदृश्यों का वर्णन। प्रस्तुत काव्य का महत्त्व इसके उत्तरार्द्ध के कारण है। इस दृष्टि से पंचम अधिकार में प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव का वर्णन है तथा अन्य अधिकारों में क्रमशः तीर्थंकर-महिमा, गर्भावतरण महोत्सव, जन्मकल्याणक महोत्सव, केवल ज्ञान की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्ति, समवशरण, ईश्वर-स्तुति, तत्त्व-निरूपण आदि के बाद कवि ने अन्त में विस्तार से अपना परिचय दिया है। इस प्रकार महावीर-चरित का वर्णन कवि नवलशाह ने परम्परागत रूप से किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने जैन धर्म के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन जैन पुराणकारों की तरह ही किया है। ग्रन्थ में सोलह अधिकार रखने का कारण बताते हुए कवि ने बड़ी सरस कल्पनाओं का आधार लिया है। तीर्थंकर-माता ने सोलह स्वप्न देखे थे, महावीर ने पूर्वभव में सोलह कारण-भावनाओं का चिन्तन करके तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था; ऊपर सोलह स्वर्ग हैं; चन्द्रमा की सोलह कलाओं के पूर्ण होने पर ही पूर्णमासी होती है; स्त्रियों के सोलह ही शृंगार बताए गए हैं, आठ कर्मों का नाश कर आठवीं पृथ्वी (मोक्ष) मिलती है। यह ग्रन्थ भी सोलह माह में ही लिखा गया। इन सब कारणों से ग्रंथ में सोलह अधिकार दिए गए हैं। वास्तव में कवि की यह सुन्दर कल्पना है।

कविवर नवलशाह भगवान् महावीर के अनन्य भक्त थे। कवि के मत में भगवान् के दर्शन-मात्र से ही जीवन सफल हो जाता है। वे स्पष्ट कहते हैं:—

दर्शन कर सुरराज हम, सन्मति सार्थक नाम।
कर्म निकन्दन वीर हैं, वर्धमान गुणधाम।।

स्पष्ट है कि कवि ने अपनी काव्यमयी वाणी द्वारा सम्पूर्ण ग्रन्थ में महावीर-चरित एवं जैन दर्शन के मूल सिद्धान्तों को उद्घाटित किया है। कवि नवलशाह ने वर्ण्य विषय के अनुकूल विभिन्न छंदों और अलंकारों का प्रयोग करके अपनी प्रतिभा का सफल प्रदर्शन किया है, कृति में कहीं भी कवि ने अनावश्यक शब्दाडम्बर नहीं दिखाया है। धर्मप्राण रचना होने के कारण यद्यपि इसका मूल्यांकन साहित्यिक स्तर से अपेक्षित नहीं है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कवि ने धार्मिक तत्त्व-व्याख्या और उद्बोधन की दृष्टि से सार्थक शब्दावली का प्रयोग किया है। ग्रन्थ में दोहा, छप्पय, चौपाई, गीतिका, सोरठा, कवित्त, त्रिभंगी इत्यादि छंदों का प्रयोग मिलता है। अतः काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी यह कृति सफल रही है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'भगवान् महावीर और उनका तत्त्व-दर्शन' नामक विशालकाय ग्रन्थ जैन धर्म को समझने के लिए एक विश्वकोश का कार्य कर सकेगा। संपादक की सूझ-बूझ के कारण ग्रन्थ का विभाजन विभिन्न अध्यायों में इस प्रकार हुआ है कि जैन धर्म के उद्भव और विकास से लेकर सम्पूर्ण जैन-दर्शन को इस भाँति समाहित कर लिया गया है कि रोचक शैली में ज्ञानवर्द्धन होता चलता है। नवलशाह कृत 'वर्धमान पुराण' को पहली बार यहाँ प्रस्तुत करके आचार्य देशभूषण जी ने जैन-साहित्य की काव्य-परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ा है। ग्रन्थ में संकलित विभिन्न विद्वानों के लेख भगवान् महावीर को समझने में सहायक रहे हैं। इतनी विपुल सामग्री से मंडित इस विशालकाय ग्रन्थ का एकमात्र प्रकाशन-उद्देश्य यही रहा है कि भगवान् महावीर और उनके सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य विवरण जिज्ञासु जैन समाज और जैनेतर पाठकों को एक स्थान पर ही उपलब्ध हो जाए। निश्चित रूप से प्रस्तुत ग्रंथ अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org